प्राची से निकलता है सूरज

डॉ नेमीचन्द जैन

प्रथम बार
वीर निर्वाण स २५१७

आवरण
सतोष जडिया
छाया
विश्वास जैन

मूल्य
दो रुपए

प्रकाशन
अहिंसा प्रसारक ट्रस्ट
८२, बजाज भवन
नरीमन पाइंट
बम्बई-४०० ०२१

मुद्रण
नईदुनिया प्रिंटरी
बाबू लाभचद
छजलानी मार्ग
इन्दौर-४५२ ००९
मध्यप्रदेश
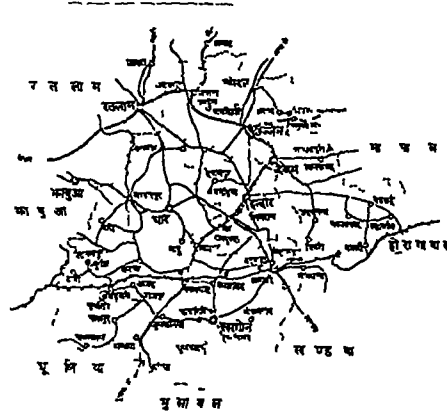
भगवान् ऋषभदेव की पूजा मध्य एशिया, मिस्र और यूनान मे होती थी। वे बैल के चिह्न वाले भगवान् की नग्न अवस्था मे पूजा करते थे। मिरिन्नियो के पूर्वज भारतीय थे। वे ऋषभ को रेसेभ, अपोलो, रेशब, बली आदि नामो से पूजते थे। सीरिया के एक नगर का नाम राषका है, जो सभवत ऋषभ का ही रूपान्तर है।

प्रजापति भगवान् आदिनाथ ने जीवनेच्छा रखने वाली प्रजाओ को कृषिकर्म मे शिक्षित किया। -स्वयम्भू स्तोत/२

यह बात स्पष्टता से जान लेनी चाहिये कि पुराणो मे भारतवर्ष के नाम का सबध नाभि के पौत्र और ऋषभ के पुत्र भरत से है। -वायुपुराण ३३/५२
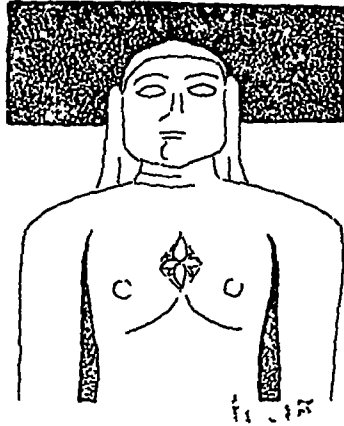
बावनगजा-मूर्ति परिमाण

ऊँचाई ८४ फुट (बावन हाथ)
एक भुजा से दूसरी भुजा तक २६'—१२"
भुजमूल से मध्यमा तक ४६'—२"
कमर से एडी तक ३७'
सिर का घेरा १३'—९"
पैर की लबाई १३'—९"
नाक की लबाई ३'—११"
आँख की लबाई — ३'—३"
कान की लबाई ९'—८'
एक कान से दूसरे कान तक १७'—६"
पाँव के पजे की चौडाई ५'

अतरग

प्रस्तुत पुस्तिका जल्दी मे लिखी गयी है- अहर्निश छपी भी उसी रौ मे है। इसमे तथ्य है। कल्पनाएँ हैं, अनुभूतियाँ है। कही-कही अत्यत रोमाचक प्रसग भी है, अत जीवन को उन गहराइयो तक ले जाने मे यह समर्थ हुई है, जहाँ तक बहुधा हम अपनी सीधी पहुँच बनाने मे असमर्थ रहते हैं।

अध्यात्म का क्षेत्र बहुत गहन और विलक्षण क्षेत्र है। वह समुद्र है। इसमे डूबने वाले तिर जाते हैं और जो अवगाहन से भय खाते हैं, वे अ-डूबे, अध-डूबे बने रहते हैं, या डूब जाते हैं।

चूलगिरि और बडवानी दो ऐसे शब्द है, जो दिगबर जैनाचार्य मुनिश्री विद्यानदजी की प्रेरणा और समाज-सेवी श्री बाबूलाल पाटोदी के पुरुषार्थ से विश्व के मानचित्र पर गौरवान्वित होने जा रहे है।

चूल का अर्थ शिखर है। चूलगिरि सतपुडा पर्वतशृखला की सर्वोच्च चोटी है। यह जैनाध्यात्म का भी वैभवशाली शिखर है।

बडवानी शब्द दो शब्दो से बना शब्द है। बड विशेषण है, बानी विशेष्य है। बड का अर्थ सब जानते हैं। बान का अर्थ तापस है और बानी का तपोभूमि।

बानी का दूसरा अर्थ है वाणिज्य या वणिक्। इस तरह बडवानी, बडवाणि, बडवानि, बडवानी आदि शब्दो का अर्थ हुआ आध्यात्मिक साधना की पुण्य-धरा अथवा व्यापारिक-वाणिज्यिक गतिविधियो का एक सक्रिय केद्र। इससे यह भी सिद्ध होता है कि नर्मदा-के-तट पर कभी नौकाओ/जलपोतो का खासा जमघट था, जहाँ की व्यापारिक हलचल/चहल-पहल पूरे देश मे चर्चित थी। आज वह सब नही है, तथापि अवशेषो मे से प्रतिध्वनियाँ आज भी सुनाई पडती है।

निश्चय ही बडवानी वाणिज्य-व्यवसाय का एक चर्चित केद्र रहा है, किंतु जैसे-जैसे समय गुजरता गया, इसकी महान् परपराएँ विलुप्त होती गई और यह विस्मृति के अधगर्भ मे चला गया। बडवानी मे आज कुछ भी नही है- न वाणिज्य, न व्यवसाय, किंतु कदाचित् यह तथ्य कोई नही जानता कि इसकी धूलधूसरित देह से राम-कथा का उपसहार लिपटा हुआ है और नर्मदा-की-लहरे आज भी इसकी व्यापारिक गतिविधियाँ कलकलित करती हैं।

अनुश्रुति है कि चक्रवर्ती भरत रेवा-तट पर आये थे और निषादो ने उन्हे गजमुक्ता के आत्मीय उपहार दिये थे। निषाद महावती मे सिद्धहस्त थे। नर्मदा-की-लहरे निषाद-जीवन के उस ऐश्वर्य की याद आज भी दिलाती है। रेवा की जलराशि मे आज भी नैषद सस्कार तैरते दीख पडते है। उनकी नौकाओ का सगीत आज भी यहा के दिग्दिगन्त मे सुनायी पडता है। भील-भिलालो की उपस्थिति नैषद अवशेषो को भूलने नही देती है।

जहाँ तक रावण का प्रश्न है, उसके प्रमुख परिजनो की तो यह महान् तपोभूमि रही है। कुम्भकर्ण (रावण-का-अनुज) और इन्द्रजीत (रावण-का-पुत्र) युद्ध मे नही मारे गये थे, बल्कि उन्होंने चूलगिरि पर आकर घोर तपश्चर्या की थी और वे वहाँ से मोक्षगामी हुए थे। यह उनकी परम पवित्र मुक्ति-धरा है। यहाँ रावण-की-पटरानी मदोदरी ने दुर्द्धर तप किया था। शत-सहस्र मुनियो ने प्रखर तप किया था। चूलगिरि निर्वाण-भूमि है। आज से दो हजार वर्ष पूर्व आचार्य कुन्दकुन्द ने इसकी वदना की है। चूलगिरि शान्ति और कैवल्य का शिखर है। यहाँ दो पल बैठ कर अशान्ततम व्यक्ति को भी सुख-शान्ति का अनुभव हो सकता है।

बावनगजा के चरणो मे नतशीश हम जब आगे के लिए सीढियाँ पकडते हैं तब हमारे भीतर प्रशम-रति के सौ-सौ झरने खुल पडते हैं। हम देह-की-सुधबुध भूल कर विदेह के सगीत मे झूम-झूम उठते हैं। मेघनाद का मन्द्रतम तप हमारी चेतना मे प्रतिध्वनित हो उठता है। कुम्भकर्ण के साधना-कुम्भ का ज्ञान-नीर हमारी पिपासा बुझाने लगता है। भगवान् आदिनाथ से भगवान् मुनिसुव्रतनाथ तक की निर्मल- उज्ज्वल परपराऐं जीवन्त-जयवन्त हो पडती है। माता मरुदेवी, आर्यिका ब्राह्मी, सुन्दरी और मदोदरी जैसी नारी-शक्तियाँ इस सिद्धक्षेत्र के साथ जुडी हुई है। हमे विश्वास है सौ शरयूजी भी इस पक्ति मे समुपस्थित रह कर गौरवान्वित होगी।

प्रस्तुत पुस्तिका चार लघुखडो मे विभाजित है परिचय, प्रवेश, परिक्रमा और प्रणाम। हमे आशा है इस पुस्तिका से जहाँ एक ओर एक आम आदमी को कुछ नयी सूचनाएँ/प्रेरणाएँ प्राप्त होगी, वही दूसरी ओर सुधी जन भी प्रेरित-स्फूर्त होकर नयी खोज़बीन मे प्रवृत्त होंगे।

—डॉ नेमीचन्द जैन
सपादक 'तीर्थंकर' 'शाकाहार क्रान्ति'

इदौर १९ जनवरी १९९१

परिचय
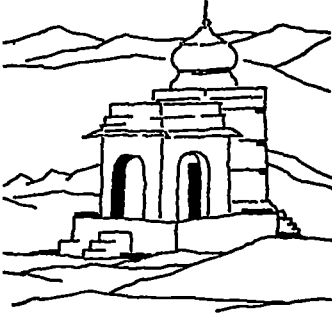
मालवा अपनी उर्वरता और
समृद्धि के लिए
प्रसिद्ध रहा है
निमाड मालवा का पार्वत्य भाग
है।
बडवानी पश्चिम निमाड का
कृषि-प्रधान सभाग है।
इन्दौर से बडवानी
१५६ किलोमीटर है
चूलगिरि बडवानी से दक्षिण मे
७ किलोमीटर है
चूलगिरि सिद्धक्षेत्र है
सिद्धत्व जैन साधना का चरम
पुरुषार्थ,
अन्तिम लक्ष्य है
सिद्धक्षेत्र उस भूखण्ड को कहा
गया है
जहाँ से कोई तीर्थकर अथवा
कोई तपस्वी मुनिराज का
निर्वाण हुआ हो
ऐसे पुण्य-स्थलो को निर्वाण-भूमि
या क्षेत्र भी माना गया है
तीर्थकरो के जीवन-वृत्त/चरित्र/
व्यक्तित्व
भी सिद्धक्षेत्र या तीर्थ माने गये
हैं।
दिगम्बर जैनाचार्य कुन्दकुन्द
ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दी
मे हुए।
उन्होने प्राकृत भाषा मे निर्वाण-
काण्ड की रचना की
निर्वाण-काण्ड मे उन्नीस निर्वाण-
भूमियो का विवरण है।
आचार्य पूज्यपाद ने सस्कृत मे
निर्वाण-भक्ति की रचना की।
निर्वाण-काण्ड मे चूलगिरि का
नाम है
निर्वाण-भक्ति मे चूलगिरि का
उल्लेख नही है
निर्वाण-काण्ड मे बडवानी/
चूलगिरि से सवन्धित एक गाथा
है
गाथा इस प्रकार है—
बडवाणी वरणयरे
श्रेष्ठ नगर बडवानी से
दक्षिणभाअम्मि
दक्षिण भाग मे
चूलगिरि सिहरे
चूल पर्वत के शिखर पर
इदजिय कुभकरणो
इन्द्रजित् (इन्द्रजीत) और कुम्भकर्ण
णिव्वाणगया
निर्वाण को प्राप्त हुए
णमो तेंसि
उन्हे नमस्कार।

निर्वाण-काण्ड मे राम-कथा से
सबन्धित एक गाथा है—
रामहणूसुग्गीवो
राम, हनुमान, सुग्रीव
गवयगवक्खोय
गवय, गवाक्ष
णीलमहाणील
नील, महानील
प्रवणवदी कोडीओ
निन्यानवे कोटि मुनि
तुगीगिरिणिव्वुदे
तुगीगिरि(मागीतुगी)से निर्वाण
को प्राप्त हुए
वदे
उन्हे नमस्कार।
इस गाथा मे राम, हनुमान,
सुग्रीव आदि के
मुक्त होने का उल्लेख है
अत हम इस तथ्य को
अस्वीकार नही कर सकते
कि राम चूलगिरि तक आये
होगे।
अनुश्रुतियो मे इस तरह के वर्णन
आये है कि युद्धोपरान्त जब
लका के कुसुमायुध उद्यान मे
इन्द्रजीत और कुम्भकर्ण ने
केवली अनन्तवीर्य के सम्मुख
मुनि-दीक्षा
ली तब राम-लक्ष्मण भी
उपस्थित थे
अत यह भी सिद्ध होता है कि
इन्द्रजीत और कुम्भकर्ण के
विहार के क्षणो मे भी
राम-लक्ष्मण रहे होगे और उन्ही
की
प्रेरणा से इन्द्रजीत-कुम्भकर्ण के
नेतृत्व-वाला मुनिसघ
भारत की ओर प्रस्थित हुआ
होगा।
इन्द्रजीत रावण का बेटा था
कुम्भकर्ण छोटा भाई था
दोनो पराक्रमी थे
दोनो ने युद्ध मे अपने पराक्रम
का
शब्दातीत प्रदर्शन किया था
पौराणिक उल्लेखो के अनुसार
इन्द्रजीत-कुम्भकर्ण
राम-रावण-युद्ध मे मारे गये थे,
किन्तु आचार्य रविषेण-रचित
पद्मपुराण
के अनुसार दोनो ने राम-लक्ष्मण
की
समुपस्थिति मे केवली अनन्तवीर्य
के सम्मुख
अपने जीवन को सम्यक्त्व की
ओर मोड
दिया था
उन्हे लगा था कि जिस ससार मे
इतना रक्त-पात,इतना राग-द्वेष है
वह निस्सार है
युद्ध ने उन्हे क्रुद्ध नही किया
शुद्ध किया
शुद्ध होते ही वे सिद्ध हुए।
जैन धर्म शुद्धात्म तत्त्व की खोज
का धर्म है
सिद्धत्व इस खोज की अन्तिम

(महादेव) कहा है।
जब हम आदि तीर्थंकर
ऋषभदेव की ओर मुडते है
(जिनकी ८४ फुटबावन हाथ
ऊँची प्रतिमा
सतपुडा-के-अचल को अभय का
वरदान दिये हुए है)
तब बडवानी के सम्बन्ध मे कुछ
और नये तथ्य हाथ लगते है
इतिहास जिन क्षणो को आज
भुला बैठा है
ऐसे महान् क्षण नर्मदा की लहरो
पर आज भी तैरते
दिखायी देते हैं।जब चक्रवर्ती
भरत यहाँ आये थे
और यहाँ के समृद्ध निषादो ने
उनका भव्य
स्वागत किया था। उन्होने भरत
को गजमुक्ताओ के
उपहार दिये थे- और उनका
भावभीना
अभिनन्दन किया था
निषाद भील-भिलालो के पूर्वज है
वे हाथियो-का, हाथियो-पर
व्यापार करते थे
महावती मे उनका प्रावीण्य देश-
विदेश मे चर्चित था

आज भी भील-भिलाले हैं, उनकी
मुख-छवियाँ
और भाषाविशेष हमे भरत के
यहाँ आने और
निषादो के यहाँ होने की याद
दिलाते है।
इस तरह बडवानी और सतपुडा-
की-पर्वत-माला
भगवान् ऋषभनाथ और उनके
ज्येष्ठपुत्र भरत
(जिनके नाम से भारत भारत
कहलाया,
इस देश का नामकरण हुआ)
की पदचापो को
कृपण-की-पूँजी की तरह सँभाले
हुए हैं
क्या जब आप नर्मदा को इधर,
या उधर से पार करते है
तब क्या उनकी पग-ध्वनियाँ
आप के कानो तक नही पहुँचती
है?
क्या जब आप बावनगजा के
विश्व-मे-सर्वोच्च विशाल विग्रह
के पवित्र चरणो मे
अपना मस्तक झुका रहे होते हैं
तब क्या इतिहास का वह
धुँधला, किन्तु
अत्यन्त गौरवशाली पृष्ठ आपकी
आँखो के
सामने प्रत्यक्ष नही हो पडता है?
भरत चक्रवर्ती थे
वे ऋषभनाथ के ज्येष्ठ पुत्र थे
उनके रथ-चक्र आठो याम

गोमुख यक्ष है और बायीं ओर
यक्षी चक्रेश्वरी।
दिगम्बर परम्परा के अनुसार
इनकी मुद्राएँ इस

प्रकार हैं—गोमुख सुवर्ण
(वर्ण), वृषभ (वाहन), चार
(भुजा सख्या),
परशु/बीजपूर, अक्षसूत्र, वरद
(आयुध),
गो-मुख और मस्तक पर धर्मचक्र
(विशेष)।

चक्रेश्वरी-सुवर्ण (वर्ण),
कमलासना, बारह (भुजा-
सख्या),
दो हाथो मे वज्र, आठ मे चक्र,
वरद, फल (आयुध)।
इस तरह
यह विशाल विग्रह ग्यारहवी
सदी का सिद्ध होता है।
जहाँ तक भगवान् ऋषभनाथ
कीप्राचीनता का प्रश्न है
यह सूत्र मोहन-जो-दडोसे भी
पीछे चला जाता है
आज जैनधर्म की प्राचीनता
निर्विवाद है
उस पर कोई प्रश्न-चिह्न नही है,
विदेशो मे भी भगवान्
ऋषभनाथ की
मूर्तियाँ मिली हैं
वहाँ के साहित्य मे भी 'ऋषभ'
शब्द के कई
रूपान्तर मिले हैं (देखे-पृष्ठ-२)।
भगवान् आदिनाथ की इस
प्रतिमा के आगे
जब हम होते हैं तब भारतीय
इतिहास के
कई गौरवशाली/महत्त्वपूर्ण
अध्याय
हमारे सामने आ खडे होते हैं
तथ्य हैं—
उन्होने मनुष्य को भोग-सस्कृति
से
विरक्त कर श्रम और श्रमण-
सस्कृति की ओर प्रवृत्त किया,
उन्होंने योग-परम्परा का प्रवर्तन
किया,
उन्होंने अपनी पुत्री ब्राह्मी को
अठारह लिपियाँ दीं, अक्षर दिये,

अपनी ही पुत्री सुन्दरी को अक-
विद्या दी,
प्रजा को बीज और फसल, हल
और खेत दिये
उसे अहिंसा का रचनात्मक/
सर्वोदयी जीवन-दर्शन दिया,
उसके जीवन-की-गुणवत्ता को
समृद्ध किया,
भरत ने जन-सेवा की परम्पराएँ
प्रवर्तित की,
बाहुबली ने युद्ध को सीमित
करने और उसे शान्ति
की दिशा मे मोडने की कला दी,
भारत का नामकरण भरत के
नाम पर हुआ।
(भरत का अर्थ खेत और
जुलाहा भी है
भरत ने इस देश को हरा-भरा
किया, समृद्ध किया
और इसके भाग्य के ताने-बाने
बुने
क्या जिसने देश को खेत दिये हो-
उसे हरीतिमा से
आच्छादित किया हो- उसके
नाम से इस
देश को नही जाना जाना
चाहिए?)

काल के थपेडो ने बावनगजा के
इस विशाल विग्रह को तहस-
नहस कर दिया
लगने लगा कि यदि इस
कालजयी ऋषभनाथ-विग्रह
को सँवारा नही गया तो
यह धराशायी हो जाएगा।
उपाय हुआ।
१४५९ ई मे भट्टारक रत्नकीर्ति
ने
इसका प्रथम जीर्णोद्धार करवाया।
प्रतिमा का नवीकरण हुआ,
इसे नवजीवन मिला और यह
काल-के-थपेडो
को कुछ समय के लिए झेल
सकी,
किन्तु सतपुडा के ग्रीष्म, पावस
और शरद् को
यह अधिक नही झेल सकी और
१९२२ ई मे देश की जैन समाज
ने अनुभव किया
कि इसे फिर सँवारा जाए,
आज से लगभग ६८ साल पहले
इसका
द्वितीय जीर्णोद्धार हुआ।
गत सात दशको मे फिर यह
जीर्ण हुई
इसमें जगह-जगह दरारे पड गयी
चट्टान भी खिसकने को हुई
सयोग से जैनाचार्य मुनिश्री
विद्यानन्दजी का
यहाँ आना हुआ (नवम्बर
१९७९)
उनकी आँखे इसे जीर्ण-शीर्ण देख
छलछला उठी।
उन्होंने इसके जीर्णोद्धार की
प्रेरणा दी
और १९९०-९१ मे
इसका तृतीय जीर्णोद्धार हुआ।

अब यह इस स्थिति में है कि
कम-से-कम दो शताब्दियों तक
समय से जूझ सके और
पूरे देश
पूरी दुनिया को
शान्ति और अहिंसा का
संदेश दे सके।
मूल शिल्पी का नाम तो अज्ञात है
किन्तु जीर्णोद्धारक-शिल्पी का
नाम
शम्भु है।
शिव और शम्भु पर्याय शब्द हैं
आदिनाथ को वृषभदेव और
महादेव भी कहा गया है
आयें, शिल्पी शम्भु के साथ हम
इस जीर्णोद्धारित विशाल विग्रह
को
प्रणाम करें
और
विश्व के कोने-कोने तक
शाकाहार (पर्यावरणिक
नैतिकता)
के प्रवर्तक और अहिंसक जीवन-
शैली के जनक
के संदेश को पहुँचायें।
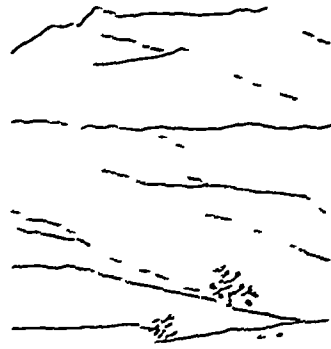
प्रवेश

विशालता चमत्कृत तो करती है, किन्तु चित्त और चैतन्य के रेशे-रेशे मे उतर कर जीवन के कायाकल्प की सामर्थ्य उसमे नही होती, तथापि कुछ विशालताएँ हैं, जिनके रोम-रोम मे गहराई है और जो चित्त को चिरन्तन जागृति प्रदान करती हैं।

भारत-मे-सर्वोच्च युग-प्रवर्तक भगवान् आदिनाथ की चौरासी फुट ऊँची प्रतिमा इस सचाई की जीवन्त साक्ष्य है। यह विशाल तो है ही, साथ ही आत्मबोध की मशाल है, करुणा की प्रशाल है, और अहिंसामूलक जीवन-शैली की जीती-जागती मिसाल है।

भुरे-भुरे भूरे पाषाण मे विश्व मे कही भी, किसी भी शिल्पी ने इतने बृहद् पटल पर आज तक न तो किसी प्रतिमा का आकल्पन किया और न ही इस तरह की किसी अद्वितीय प्रतिमा का निर्माण ही कोई मूर्तिकार कर सका।

असल मे यह मात्र मूर्ति ही नही है वरन् कई शताब्दियो मे विस्तृत मानव-सस्कृति के उद्भव और विकास की गौरव-गाथा है।

यह धरती है, यह आकाश है, यह अगन है, यह पवन है, यह जल है, यह ग्रीष्म है, यह वर्षा है, यह शरद् है और है यह मनुष्य की अदृप्त आकाक्षा की ऐसी अद्भुत व्यजना है जो पाषाण को पानी करती है और उसे एक समानुपातिक नीराग आकृति मे ढालती है।

क्या जब आप इस विशाल प्रतिमा की छॉव मे उद्ग्रीव खडे होते हैं, तब आपको ऐसा नही लगता कि मुनिश्रेष्ठ अनन्तवीर्य द्वारा लका-मे-दीक्षित आत्मजयी इन्द्रजीत और योगिराज कुम्भकर्ण चूलगिरि से उतर कर आपके कानो मे कोई अपूर्व आध्यात्मिक सदेश कह रहे है? क्या आप उस महान् अनाम शिल्पी की टकक ध्वनियाँ नही सुन पा रहे हैं, जिसने चूलगिरि की इस गोद को इस विशाल प्रतिमा के अधिष्ठान के लिए चुना?

क्या आप यह नही सोचते कि जब हम एक छोटा-सा घर-ऑगन बनाने को होते हैं, तब हमे कितना टीम-टाम बटोरना-जुटाना होता है

और कितने श्रमिको और शिल्पियो की टीम-टोली की आवश्यकता हमे होती है? जब तत्कालीन मुख्य शिल्पी ने इस भूरे पाषाण पर अपनी टॉकी की नोक प्रथम बार रखी होगी, तब क्या आप नही सोचते कि सतपुडा की ये हरी-भरी धूप-छाँही पहाडियाँ किसी सम्मोहक नृत्य मे विभोर हो पडी होगी और इनके मन प्राण बावरे हो पडे होगे? क्या तब अप्सरिका नीलाजना का नृत्योत्सव क्षणाश मे पुन घटित नही हुआ होगा? क्या उस रूपसि की पग-थापे और नूपुर-झकृतियाँ शिल्पी की टॉकी मे उतर कर वन्दना के लिए पाषाण मे स्तब्ध नही हुई होगी?

क्या सचमुच आप यह नही सोच पा रहे है कि अनन्तवीर्य-दीक्षित मुनियो ने सतपुडा के इस नयनाभिराम अचल मे वीतरागता का शखनाद किया होगा? जब युद्ध की व्यर्थता मे-से सम्यक्त्व-का-सूर्य दमकता है और वातावरण मे मुक्ति-का-मधुर-सगीत गूँजता है, तब क्या निखिल मानवता के मस्तकाभिषेक का वह रोमाचक क्षण अपूर्व नही होता है?

रावण का बेटा इन्द्रजीत और अनुज कुम्भकर्ण जब मुनिमुद्रा मे इस चूलगिरि पर साधना-मग्न हुए होगे, तब उस रोमाचक क्षण के सपूर्ण वैभव की कल्पना भले ही आप न कर पाये, किन्तु यह निश्चित है कि वह वैभव विश्व के समस्त वैभवो की तुलना मे अप्रतिम-अद्वितीय रहा होगा।

जब हम रावण-की-पटरानी मदोदरी के मदिर को देखते है, तब तो सचमुच सपूर्ण रामायण ही हमारे रोम-रोम मे अँगडाई भर उठती है। लगता है मदोदरी अपने देवर और प्रिय पुत्र को प्रशम-रति-मूलक वात्सल्य की छाया मे बिठाये सालो यहाँ रही होगी और उस क्षण आर्यिका मदोदरी मे एक विलक्षण सामायिक ने जन्म लिया होगा—ऐसी अद्भुत समता ने जहाँ न कोई पुत्र होता है, न अन्य कोई सबन्ध। क्या तब किसी माँ का मन अपने बेटे की दुर्द्धर तपश्चर्या और अनुपम उपलब्धि के चरणो मे झूम-झूम नही पडा होगा?

क्या राम यहाँ कभी आये होगे? माना, तुगीगिरि (मागीतुगी) उनका मुक्तिधाम है, किन्तु क्या जैनाचार्य विद्यानन्दजी के पदचापो मे आप राम के पदचाप नही सुन पा रहे है? क्या मुनिसुव्रतनाथ (वीसवे

तीर्थंकर) की देशना-ध्वनियाँ किसी पर्वत-सधि से आपको पुकार नही रही हैं?

गुजर चुकी हैं कई शताब्दियाँ। लोग यहाँ आते रहे हैं, जाते रहे हैं, और झुकाते रहे हैं अपना श्रद्धाभिभूत मस्तक इन महान् विभूतियो के पदचिह्नो मे, किन्तु क्या हम, जिन चरण-पादुकाओ को मस्तक नवाते हैं, उन चरण-चिह्नो पर चलने का सकल्प या प्रयास कभी कर पाते हैं?

चूलगिरि सतपुडा पर्वत-शृखला का सर्वोच्च शिखर है, जहाँ आज भी मेघावलियाँ प्यासी आँखो से उतरती हैं, और इन चरण-पादुकाओ की वन्दना करती है। वस्तुत वे सिर्फ मेघावलियाँ ही कहाँ होती हैं, उनमे हो कर हिन्द महासागर और उसमे हो कर विश्व के सारे समदर, उनकी वन्दना करते है, और फिर यह गधोदक-पूरे देश मे नर्मदा से हो कर कण-कण मे समा जाता है। आप, हम, सब उसका आचमन करते हैं, किन्तु क्या तब भी हम किसी आध्यात्मिक स्फूर्ति का अनुभव एक पल को भी कर पाते हैं?

शायद आप नही सोच पायेंगे कि जब राजा भोज की धारा नगरी के किसी कारागृह मे आचार्य मानतुग अडतालीस श्लोको की रचना कर रहे थे, तब उन्ही भक्ति-विह्वल क्षणो मे सतपुडा की गोद मे कोई महान् शिल्पी इस पाषाण को अगुल-दर-अगुल तराशता भगवान् आदिनाथ के शिरोभाग से चरण-तल तक की तीर्थ-यात्रा कर रहा था? क्या उसने अपनी इस चौरासी फुटी तीर्थ-यात्रा मे चौरासी लाख योनियो की निस्सारता के दर्शन तब नही कर लिये होंगे?

जब शिल्पी अर्द्धोन्मीलित/नासिकाग्र दृष्टि के उत्कीर्णन के लिए, अपनी टाँकी चला रहा होगा तब क्या उसने नीलाजना का सम्मोहक नृत्य नही देखा होगा और क्या यह नही देखा होगा कि किस तरह शान्त रस के चरणो मे रसराज शृगार ने आत्म-समर्पण किया और किस तरह एक युग-प्रवर्तक के पाँव लौकिकता से अलौकिकता की ओर चल पडे?

उसने देखा होगा कि इस जगत् मे शत-सहस्र नीलाजनाएँ आती हैं, जाती हैं, किन्तु क्या वे किसी महान् योगी के जीवन मे प्रशम-वैभव का

निमित्त बन पाती हैं? उसने सोचा होगा कि नीलाजना ने तो भगवान् की आँखे आँज दी, किन्तु क्या मैं इन आँखो मे ऐसा कुछ टाँक सकता हूँ जो युग-युगो तक दर्शनार्थियो की आँखे आँजता रहे?

क्या इन आँखो मे आप डुबकियाँ लगा पा रहे हैं? आप अभिषेक करे तो मात्र नाम के लिए वैसा न करे अपितु इन आँखो की गहराइयो मे भी उतरे और नीलाजनाओ के जनम-मरण की घटनाओ मे-से स्वय-मे वीतरागता की परम अनुभूति को भी उतरने दे। शृगार मे मे शान्त रस के परम वैभव का आस्वादन करे।

और क्या आप यह नही देख रहे है इन आँखो-के-उत्कीर्णन मे, कि किस तरह भोग-सस्कृति त्याग-पत्र दे रही है और श्रम-श्रामण्य-सस्कृति नये दायित्व को अपने सशक्त कधो पर सँभाल रही है? इधर देखिये, भगवान् ब्राह्मी को लिप्यक्षर दे रहे है और सुन्दरी को अक, और प्रजा को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

असल मे यह मात्र प्रतिमा नही है, प्रतिमान है हमारे जीवन का, हमारे जीवन-लक्ष्य का—आइये इसकी वन्दना करे।।
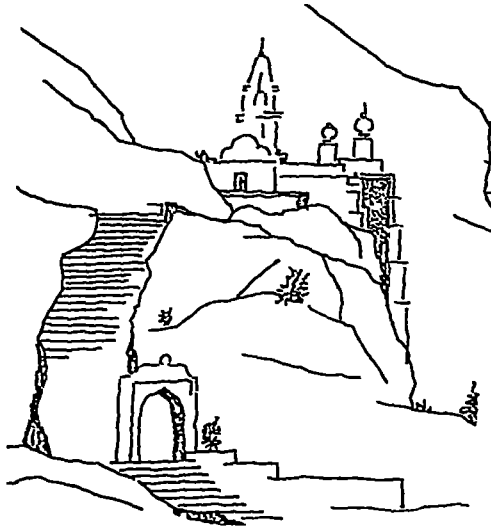
परिक्रमा

उस दिन प्रात
आँख जरा जल्दी ही खुल गयी
लगा सिरहाने कोई बैठा है
और बाते करना चाह रहा है
मैं, सभवत, उस समय अपनी दिनचर्या
आरम्भ करने की चित्तवृत्ति मे था कि
उसने मुझे आँखो के इशारे से रोका,
बोला—'कभी बावनगजा गये हो?'
मैंने कहा—'वहाँ मैं कम-से-कम
बावन बार तो गया ही हूँ।'
'कभी उस विशाल मूर्ति को
शिरोभाग से चरण-तल तक
ध्यान से देखा है?'
मैं चौका। यह आदमी इस तरह का
प्रश्न क्यो कर रहा है? कौन है यह?
मैंने उत्तर दिया—'देखिये, पहले तो
अपना परिचय दीजिये ताकि मैं यह
जान सकूँ कि आप कौन हैं और
क्या चाहते है।'
इस तरह पहेली बूझने से तो कोई काम
सरेगा नही।'
बोला—'मैं शिल्पी हूँ। मूर्तियाँ बनाता हूँ।
धन या कीर्ति की लालसा से नही,
ससार-की-व्याख्या-समीक्षा के लिए।
उसमे जो सार है
उसे
युगयुगो तक
पाषाण मे सुरक्षित करने के लिए।'
'तुम मूर्तिकार—और इतने सवेरे,
यहाँ। मुझसे क्या
वास्ता है तुम्हारा?'
'यूँ ही चला आया। मैंने सोचा—
आप बावनगजा कई बार गये हैं
एक बार मेरे साथ भी चले और
उस विशाल विग्रह की वन्दना
मेरे साथ करे।'
मैने कहा—'रुकिये। पेट मे कुछ
डाल ले, फिर
चलते हैं।'
बोला—'मैं देव-दर्शन के बिना
कुछ नही लेता।'
मैंने सहज ही पूछ लिया—'क्या
यह नियम जैनो की बपौती है?
उन्हे ही इसे पालना चाहिये?
क्या किसी महापुरुष
के दर्शन उदर-पोषण से कम
महत्त्वपूर्ण है? क्या हमे
अपने जीवनादर्श को आहार या
उपाहार से पहले
अपनी याद मे नही डाल लेना
चाहिये?'

मैं सिर झुकाए तैयार हो गया

कुछ ही घटो वाद मै उस अनाम शिल्पी के
साथ वावनगजा आ पहुँचा।
शिल्पी कह रहा था—
'तव की वात और थी
तव एक धुन थी कि ऋपभनाथ की एक
विशाल मूर्ति तैयार की जाए। सोचता था
इस पहाडी को ही ऋपभनाथ क्यो न वना दिया जाए?
यहाँ वैठूं और अहर्निश इस साधना को सपन्न करूँ।'
'तो आपने यह काम स्वेच्छा से किया है,
किसी राजा-महाराजा के दवाव मे नही।'
'राजा-महाराजा का दवाव या नियन्त्रण कला
पर कभी हो नही सकता, कला निर्वन्ध-मुक्त होती है
और फिर मुक्ति को पापाण पर नोदने
के लिए भला पराधीन होना कौन पसद करेगा?'

'ऋषभ वातरशना, केशी, पिशग काय, दिगम्बर थे
उस निष्परिग्रही के अकन मे
मुझे किसी वैभव की आवश्यकता
ही कहाँ थी?'
मैं मौन।

मैंने धीमे स्वर मे पूछा—
'सवमे पहले आपने क्या किया?'
'सतपुडा की एक-एक पुड छान डाली।
चूलगिरि भी गया।
वहाँ इन्द्रजीत और कुम्भकर्ण-जैसे मुक्त पुरुपो के
चरण छूए और फिर ज्यो-ज्यो
नीचे की ओर
आता गया
लगता गया कि इस पहाडी के ही किसी भाग को
ऋपभ-प्रतिमा का अधिष्ठान वनाया जाए।
मैंने देखा—एक गुफानुमा चट्टान मुझे पुकार रही है।
मैंने आँखे मूँद ली और भीतर-ही-भीतर उस
पापाण पर कायोत्सर्ग मुद्रा मे खडे भगवान्
आदिनाथ का सपूर्ण वैभव देख लिया। सोचने लगा—
इस विशाल चट्टान पर मुझे टाँकी चलानी है
यह मुझे अपनी देह पर मुक्ति-की-प्रक्रिया के टकण के लिए
न्योत रही है'। मैं झूम उठा।
मैंने आँखे झुका ली और कटिबद्ध हो गया।
दो-तीन दिन यूँ ही आता-जाता रहा।
चट्टान ने कोई शिकायत नही

क्या होगा और कहाँ से
कितना पाषाण मुझे रिक्त करना
होगा। मैं
व्यर्थ पाषाण हटाने लगा।
सार्थकता सामने आने लगी।
यह तप ही था,
तप मे हम जिस निस्सारता को
हटाते हैं, उसके हटते ही
सार उभरने लगता है, वैसा ही
यहाँ हुआ।
पाषाण ने व्यर्थता-के-वस्त्र
उतारने शुरू किये,
उसकी मूल प्रकृति प्रत्यक्ष होने
लगी। मैं उसी की खोज मे था।
तप को टंकित करने के लिए भी
तप करना
होता है, यह मर्म मुझे उस दिन
मिला।
सम्यक्त्व का समग्र त्रिकोण मेरी
टाँकी पर पहरा देने लगा।
ललाट और केश।
आँखे। अक्षि-कोण। उनका
विस्तार। नासिका-प्रदेश से
उनकी मैत्री।
कर्णमूल तक उनका विस्तार।
उनका अर्द्धोन्मीलन। नासिकाग्र
दृष्टि।
ओष्ठ-सम्पुट। चिबुक। चिबुक-मध्य
की गहराइयाँ। ग्रीवा। भुजमूल।
भुजाएँ। उनका आजानु विस्तार।
वक्षस्थल। श्रीवत्स। नाभि।
कटि। दिगम्बरत्व। अँगुलियाँ।
उनका आरोहण-अवरोहण।
पिंडलियाँ। एडी। अगुष्ठ। चरण।
चरण-तल।
क्रमश जल-की-तरह नीचे की
ओर बहता गया मैं। लगा
प्रकाश की कोई धार मेरी टाँकी
मे-से नीचे की ओर दौड रही
है।
पता नहीं कैसे, किन्तु पूरे एक
संवत्सर मे
मैंने इस विशाल विग्रह को सपन्न
किया।
जब चक्षु आँक रहा था तब
उनकी गहराइयो मे उतरना
हुआ।
चक्षुओं-से-पार मुझे नामालूम
क्या-क्या मिला-? क्या नही
मिला?

प्रजाजन खडे हैं। कह रहे हैं। भोग
और श्रम संस्कृतियो का
परिवर्तन
हम समझ नहीं पा रहे हैं।
समझाइये। राह दिखाइये।
विचलन समाप्त
कीजिये।
भगवान श्रम और पुरुषार्थ की
महत्ता/गरिमा बता रहे हैं।
लोग दत्तचित्त सुन रहे हैं। सब
कुछ नया है।
खेत बनने लगे हैं।प्रासाद उठ खडे
हुए हैं। नहरे कट गयी हैं।
हल चलने लगे हैं। फसले आने
लगी हैं। नगर बस गये हैं।
लोग प्रसन्न हैं। श्रम की महत्ता से

अभिभूत सबके मस्तक झुके हुए
है। सोच रहे
है—वह भी कोई जीवन था कि
तुच्छ चित्त पड़े-पड़े सा रहे है?
जीना हो तो पुरुषार्थ और
स्वाभिमान के साथ जियो। स्वय
जियो और
दूसरो को जीने दो।

एक ओर मे अजितवीर्य
बाहुबली दूसरी मे भरत दीख
पड़ रहे है।
दूसरी बार जब देख रहा हूँ तब
एक मे ब्राह्मी और दूसरी मे
सुन्दरी
दिखायी पड़ रही है। मेरी टाँकी
ने दो पल रुक कर दोनो को
प्रणाम किया
और फिर यात्रा शुरू कर दी।

नीलाजना का नृत्य चल रहा है।
अचानक उसकी मृत्यु हुई है।
उसकी जगह एक और नीलाजना
अवतरित हुई है, किन्तु भगवान्
पर क्षणभगुरता
का मर्म उघड़ गया है। और
चौदहवे कुलकर नाभिराय का
वह बेटा, जिसके बेटे के नाम पर
भारत का नामकरण हुआ,
सन्यस्त हो कर आश्वस्त हुआ
है।
वह तप के लिए निकल पड़ा है।
उसे अब वह चाहिये जो
ससार-से-पार है।

सार की खोज के लिए
ससार-से-सिमिट-कर उसने
अन्तर्यात्राएँ शुरू की है।
दृष्टियाँ नासिकाग्र है। इस दौरान
मे मै इतना विभोर हूँ, कि मुझे न
अपनी
सुध है, न टाँकी की। टाँकी खुद
भी सुध-बुध खोये स्तब्ध है।
पूरे तीन साल लगे मुझे आँखो की
गहराइयो मे उतरने मे,
किन्तु सिर्फ एक क्षण लगा
दृष्टियो को नासिकाग्र पर
केन्द्रित करने मे।
तब सारी हलचल शान्त हुई-सी
लगी। पाषाण निराकुल-सा के
फूल-सा लगा।
मै अग-अग मे यौवनागमना को
टटोलता रहा
और सोच रहा था कि
भुजाओ ने मुझे पुकार लिया।
श्रीवत्स के इर्दगिर्द मुझे 'धरती
मेरा कुटुम्ब' की ध्वनि सुनायी
दी—
फिर वह डूब गई और धरती से
हट कर लोकव्यापी हुई—सी
लगी। प्राणिमात्र के
लिए करुणा से अभिषिक्त वह
पाषाण इतना जीवन्त हो उठा
कि मै
तृप्त हो गया। धन्य हो उठा।
भुजमूल से अँगुलियो तक आने मे
मुझे देर इसलिए नही लगी चूँकि
पाषाण

ने मेरे साथ परिपूर्ण सहयोग किया। वह टॉकी चले इससे पहले
स्वय विरक्त होने लगा। जहाँ-जहाँ उसे अपनी व्यर्थता का वोध हुआ, वह
स्वय वहाँ से हट गया। खिर गया। उदासीन हो गया। ठीक ऐसे
ही जैसे कर्म निर्जरित होते है।
सच उस क्षण मैंने पाषाण को पानी हुआ देखा। तप मे ऐसा होता है।
हुआ है। होता रहेगा।
वीतरागता का प्रहार इतना अचूक होता है कि
सब-सारी अग्नियाँ जल बन जाती हैं।
मैंने अँगुलियो की ओर देख कर पूछा—'यह तो बताओ
कि मध्यमा को तर्जनी पर क्यो चढा दिया है?'
बोला—तर्जनी के तर्जन पर शासन पाने के लिए। ऋत को, मन की सभी ऋतुओ
को इसी तरह टकित करना चाहता था।
लोक-जीवन मे शिशुओ मे सत्य-की-अभिव्यक्ति और उसके सकल्प का प्रकटीकरण
~~इसी तरह हुआ है~~। यह परम्परा है। दिगम्बरत्व सद्यजात शैशव की तरह
का होता है, अत मुझे और मेरी टॉकी दोनो को शिशु वनना पडा।
कोई पक्व चित्त पाषाण पर काम नही कर सकता।
शैशव की वीतरागता और सहजता ही पाषाण से सवाद वनाने मे समर्थ है।
चरण-मूल तक आते-आते मेरे जीवन के सारे रण समाप्त हो गये
यहाँ तक कि मरण भी चुकने लगा।'

यह सब हो ही रहा था कि मुझे लगा कि मैं एकाकी, घर
लौट आया हूँ। शिल्पी का साथ छूट गया है।
शिल्पी कौन था
कब था, कैसा था, पता नही?
पर आज भी
उसकी
उस परमार्थ-समृद्ध कला को प्रणाम करने मे मन को सुख मिलता है और
लगता है कि मैं उस कालजयी कलाकार के सान्निध्य मे
इस विशाल विग्रह की चरण-वन्दना कर रहा हूँ।

प्रणाम

वन्दना के इन स्वरों में
एक और स्वर आ मिला है
भक्तामर स्तोत्र के अमर कवि
आचार्य मानतुंग का।
स्तोत्र का बाईसवाँ श्लोक सतपुड़ा
की पर्वत-मालाओं में
अनुगुंजित है और वन्दना की हर
परिक्रमा में
मेरे साथ है—
स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति
पुत्रान्,
नान्यं सुतं त्वदुपमं जननी
प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि
सहस्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति
स्फुरदंशुजालम्॥

स्त्रियाँ सौ-सौ
जनमती
पुत्र सौ-सौ
किन्तु
सुत तुम-सा
न कोई
जनम पायी।
नखत
नाना धारती
सारी दिशाएँ,
किन्तु
प्राची ही जनमती
सूर्य को तो।

प्राची से निकलता है सूरज